आधुनिक योग की परम्परा

डॉ0 आशीष प्रताप सिंह*

ज्ञानी एवं मनीषियों के अनुसार उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी में आधुनिक योग का सैद्धान्ति, वैचारिक एवं प्रायोगिक रूप में योग का प्रभाव अधिक है। आधुनिक योग के ऋषियों, महर्षियों एवं आचायों ने योग सम्बन्धी तत्व के निरपेक्ष में व्याप्त समस्त प्रकार की भ्राँतियों को दूर किया और इसके साथ ही आधुनिक योग की परम्परा डाली। इन लोगों ने प्राचीन योग पद्धतियों एवं सिद्धान्तों को ही प्रमाणित किया और उनका आधुनिकीकरण (Modernisation) करते हुए विश्व के समाज को एक नयी दिशा दिया है। जिन आधुनिक योग के आध्यात्मिक महापुरुषों ने योग का शानदार आगाज किया, जिन्होंने अतुलनीय शक्ति व सौन्दर्य के द्वारा विश्व की आत्माओं का दिव्य मार्गदर्शन किया, उन दिव्य महापुरुषों के नाम अंकित करता हूँ। प्रमुखता से चार महापुरुषों को रेखांकित कर रहा हूँः–

1. स्वामी राम कृष्ण परमहंस जी, 2. महर्षि अरविन्द जी, 3. परमहंस योगानन्द जी (जिनकी रचना–आटो बायो ग्राफी ऑफ ए योगी) एवं 4. स्वामी राम देव जी।

इन दार्शनिक एवं योगी महापुरुषों ने आसन, प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि यौगिक क्रियाओं का निरूपण किया। ब्रह्म क्या है? ब्रह्म से साक्षात्कार कैसे हो सकता है? इस पर सैद्धान्तिक विचार प्रस्तुत किया है। इसी दृष्टिकोण से कहा जा रहा है कि समकालीन भारतीय दर्शन एवं योग का स्वरूप 'ध्यान चिन्तन' कर केन्द्रित था। अध्ययन से प्राप्त होता है कि ध्यान केन्द्रित कर चिन्तक कुछ विशेष 'भावो' को पकड़ लेता है। अब उस भाव पर वह अपना विश्वास टिकाता है तथा परिकल्पनात्मक चिन्तन के द्वारा उस भाव की बौद्धिकता तथा उसका प्रमाण्य स्थापित करता है।

सर्वप्रथम राम कृष्णपरमहंस माँ काली की उपासना (पूजा) करते थे। 'कामारपुकुर' नामक बंगाल प्रान्त का एक छोटा सा ग्राम है, जहाँ रामकृष्ण का जन्म 18 फरवरी 1836 में हुआ। वे एक माँ काली के विशाल मन्दिर में पुरोहित के रूप में थे। उस समय माँ काली के पुरोहित की आयु बीस वर्ष थी। जिस मन्दिर में रामकृष्ण रहते थे उस मन्दिर के अन्दर काले पत्थर से बनी वह देवी की मूर्ति थी। इसी परिप्रेक्ष्य में एक छोटा सा दृष्टान्त प्रस्तुत करता हूँ। ''माँ काली देवी विशाल मन्दिर में बहुमूल्य साड़ी पहने हुए विश्वसमाग्री इन्द्राणी के रूप में निवास करती थीं।'' वह शिव के भुलुण्डित देह के ऊपर नृत्य कर रही थी, उसके दोनों वाम हस्तों में से एक में तलवार, दूसरे में छिन्न मुण्ड था और उसके दो दक्षिण करों में से एक में प्रसाद और दूसरे में 'भा भैः' की वराभय मुद्रा थी। वह महाप्रकृति है–जो सृष्टिस्वरूपिणी तथा प्रलयंकारी दोनों ही है। यही नहीं, अपितु जिनके कान सुनने में समर्थ है, उनके लिए वह उससे भी कहीं अधिक है। वह विश्व जननी है। वह सर्वशक्तिमान मेरी जननी है, वह अपनी सन्तानां के सम्मुख विभिन्न रूपों व दिव्य अवतारों के रूप में आत्मप्रकाश करती हैं। वह दृश्यमान देवता है, जो अपने कृपापात्रों को अदृश्य ईश्वर की तरफ पथ–निर्देश करती हुई ले जाती है। ''और उसकी वैसी इच्छा हो तो वह समस्त सृष्टिभूतों के अहंकार का अन्तिम चिन्ह तक भी नष्ट करती हैं और उन्हें निर्विकार अगम्य ब्रह्म के चैतन्य में विलीन कर देती है। उसकी कृपा से सीमाबद्ध अहम–असीम अहम–आत्मा–ब्रह्म में विलीन हो जाता है।''[1]

अध्ययन से पता चलता है कि रामकृष्ण परमहंस में योग का स्वरूप दो रूपों में दिखाई पड़ता है। प्रथम माँ काली की ध्यान उपासना और द्वितीय उनकी ध्यान समाधि। प्रथम स्वरूप की ध्यान पूजा में वे काली माता को कृष्णत्वक्धारी शरीर के रूप में देखते थे। वह दृश्यमाना थी। प्राकृतिक व ईश्वरीय शक्ति ने एक नारी के रूप में मूर्तिलाभ किया था, जो इसी तरह मनुष्यों के साथ योग स्थापित करती है, वह काली हैं। अपने मन्दिर के अन्दर उसने रामकृष्ण को अपनी देह की गन्ध से सम्मुग्ध कर दिया, उसे अपने बाहु पाश में आवेष्टित कर लिया और अपने जटिल केशजाल में बन्दी बना लिया। वह अपने हास्यांकित मुख के साथ एक प्राणहीन मूर्तिमात्र न थी। सिर्फ शास्त्रीय प्रार्थनाओं से उसकी क्षुधा न मिट सकती थी। वह जीवित थी, श्वास–प्रश्वास लेती थी, शय्या त्याग कर उठती थी, भोजन करती थी,

* प्रवक्ता–शारीरिक शिक्षा विभाग, का0सु0साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय अयोध्या, फैजाबाद

विहार करती थी और पुनः शयन करती थी। दिन के समय उसकी दिनचार्य के अनुसार मन्दिर में उसकी सेवा का कार्य नियमित रूप से चलता था। प्रत्येक प्रातःकाल घंटा बजता था, आरती का दीपक जलता था। नाट्य मन्दिर में शहनाई बजती थी, करताल और मृदंग बजते थे। माँ विनिद्र होकर उठ जाती थीं। माँ के श्रृंगार के लिए उद्यान से गुलाब, रजनीगन्धा व चम्पक के फूल आते थे। प्रातः नौ बजे बाजे के साथ–साथ पूजा का घण्टा बजता और माँ अपनी रजतशय्या पर शयन करने के लिए चली जातीं। सायंकाल छः बजे फिर घण्टा बजता और माँ उपस्थित होतीं। सन्ध्या की भारती के दीपक के साथ–साथ वाद्यों की ध्वनि फिर बज उठती। शंख बजाये जाते, घण्टियाँ बजतीं और रात्रि के नौ बजे इस वाद्य–ध्वनि के साथ ही माँ के शयन की घोषणा होती माँ सो जाती।

रामकृष्ण सारा दिन माँ के आहार–विहार में, उसके समस्त कार्यों में उसके साथ ही साथ रहते। वही उसे वस्त्र पहनाते, उसके वस्त्र उतारते। वही उसे अर्ध्य चढ़ाते, भोग लगाते। शयन–उत्थान सभी समय वह माँ के साथ ही साथ रहते। ऐसी दशा में रामकृष्ण के हस्त, तक्षु और मन धीरे– धीरे देवी के रक्तमांस के साथ घनिष्ठता सम्पादन किये बिना कैसे रह सकते थे? देवी का प्रथम स्पर्श रामकृष्ण के हाथ में दंशन के समान लगा और उस दंशन ने उन्हें हमेशा के लिए माँ से संयुक्त कर दिया।[2]

यहाँ रामकृष्ण की ध्यान साधना पराकाष्टा की थी। वह दिन–रात देवी की ही स्तुति में ही संलग्न रहते थे। रामकृष्ण के शब्दों में–एक दिन मैं असह्य यन्त्रणा से व्याकुल हो रहा था। मेरा हृदय जैसे गीले वस्त्र को ऐंठा जाता है, उसी प्रकार ऐंठने लगा। मैं पीड़ा से बेचैन हो गया, मेरे मन में यह भाव उठने के साथ ही कि मैं अब कभी देवी के दर्शन न पा सकूँगा, एक भयानक पागलपन मुझ पर सवार हो गया। सोचने लगा, यदि यही होना है तो जीवन से क्या लाभ है? देवी के मन्दिर में तलवार झूल रही थी। वह दिखाई पड़ी और उसके साथ ही विद्युत के समान एक विचार मेरे मन में खेल गया। 'खड्ग! इस खड्ग से ही मैं अपने जीवन का अन्त कर दूँगा।' इसके बाद मुझे केवल एक असीम ज्योतिष्मान् आत्मा का महासमुद्र दिखाई देने लगा। जिधर भी देखता, उधर ही वही ज्योतिर्मयी तरंगे उठती दिखाई देती थीं और वह तरंगमाला गर्जन करती हुई मुझे ग्रास करने के लिए बढ़ी चली आ रही थी! मेरा श्वास रूक गया। मैं संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पड़ा। मेरे चारों तरफ एक अक्षय आनन्द का समुद्र निरन्तर डोलने लगा। अपनी आत्मा के अन्दर मैं यह अनुभव करने लगा कि देवी माँ वहाँ विराजमान हैं।[3] राम कृष्ण का माँ काली का ध्यान ही उनका एक मात्र भरोसा था।

दूसरा उनका ध्यान समाधि, रामकृष्ण अत्यधिक समय तक समाधि में लीन रहते थे। अध्ययनोपरान्त एक दृष्टान्त लिखते हुए कि जब भक्त को प्रेम के मार्ग से ही ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। तो वह प्रारम्भ में भगवान की किसी एक विशिष्ट मूर्ति को ही अपना आदर्श के रूप में स्वीकार कर लेता है। रामकृष्ण ने माँ को अपने आदर्शरूप में स्वीकार किया था। बहुत समय तक वे अपने इस एक निष्ठ प्रेम में ही निमग्न रहे। शुरू में वे अपनी भक्ति व श्रद्धा के लक्ष्य को प्राप्त न कर सके, परन्तु धीरे–धीरे वे उसे देखने, स्पर्श करने व ध्यान में ही वार्तालाप करने में समर्थ हो गये। यह विश्वास हो जाने पर रामकृष्ण ने अनुभव किया कि भगवान् ने नाना रूप उनकी प्रियतम माँ की मूर्ति में से ही उद्‌गत हो रहे हैं। इस दिव्य बहुरूपता से उनकी दृष्टि ओत–प्रोत हो गयी और अंत में इसके मधुर संगीत से वे इस प्रकार परिपूर्ण हो गये कि उनके अन्दर अन्य किसी वस्तु के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहा। इस अवस्था का नाम ही सविकल्प समाधि[4] अथवा अतिचेतन भावावेश की अवस्था है, जिसमें आत्मा विचार के आतंरिक संसार से संयुक्त रहता है और ईश्वर के साथ अपने जीवन के एकात्म होने के भाव का आनन्दोपयोग करता है। परन्तु जब कोई एक भाव आत्मा को आविष्ट कर लेता है, तब अन्य सब भाव मुरझा व विनष्ट हो जाते हैं; और उसकी आत्मा अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् निर्विकल्प समाधि–या ब्रह्म के साथ अंतिम मिलन के समीपतर पहुँच जाती है।[5] इस प्रकार रामकृष्ण अपनी शिक्षाओं में बताया कि स्थूल भाव से समाधि दो प्रकार की होती है। ज्ञान मार्ग से विचार करते–करते 'अहंकार' का नाश हो जाने पर जो समाधि होती है, उसे 'निर्विकलप समाधि' कहते हैं। भक्तिमार्ग की समाधि को 'भाव समाधि' कहते हैं।

प्रेम के द्वारा भगवान् से मिलने के जितने भी तरीके हैं, भक्तगण स्वामी भृत्य भाव, माता, पुत्र भाव, सखा भाव, पति–पत्नी भाव आदि जिन उन्तीस भावों में से किसी एक का आश्रय लेकर भगवान् से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं, उन सब पर रामकृष्ण का पूरा अधिकार हो गया। ध्यान–समाधि के द्वारा

सभी पार्श्वो पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली। रामकृष्ण की दीक्षागुरू–भैरव थी। जिन्होंने रामकृष्ण के अन्दर भगवान् के अवतार का दर्शन किया। इस प्रकार नागा गुरू नग्न तोतापुरी के भी सानिध्य में रामकृष्ण ने समाधि की अंतिम मंजिल–निर्विकल्प समाधि पर–जिसमें कि द्रष्टा और दृश्य दोनों का ही लोप हो जाता है पहुँच गये।[6]

रामकृष्ण की दृष्टि में ''काली, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था, जिसे वह ब्रह्म कहते थे। काली–शक्ति हैं। वह सर्जन, रक्षण व संहार का कार्य करती है, यही शिक्षा रामकृष्ण योग के रूप में अपने शिष्यों को देते थे।'' अतएव भगवान के साथ योग साधन के लिए मनुष्य मात्र का आहावन करने पर भी रामकृष्ण शिष्य–निर्वाचन में अत्यन्त कठोर थे। वे कहते थे कि–''अपने शिष्यों का वे स्वयं चुनाव नहीं करते। 'माँ' ही उसका चुनाव करती है। मैंने उन्हें नहीं चुना। जगन्माता ही उन्हें मेरे पास लाई हैं। रात्रि में जब मैं 'ध्यान' करता हूँ तब परदा गिर जाता है और उन्हें मेरे सामने उन्मुक्त कर देता है। मैं दीक्षा देने से पूर्व अपने शिष्यों के चरित्र के बारे में अपना पूर्ण सन्तोष कर लेता हूँ।'' वे अपने शिष्यों के शिक्षकों के पास जाकर, उनसे उनके बारे में पूरी जानकारी प्राप्त करते थे और फिर ध्यान मग्न होकर उनका अध्ययन करते थे।

रामकृष्ण अपने दर्शन में दो विभिन्न स्तरों व मंजिलों में स्पष्ट भेद करते हैं–एक माया के संकेत से आदिष्ट है, जो कि पृथकीकृत विश्व की वास्तविकता की सृष्टि करती है, दूसरा परिपूर्ण ध्यान (समाधि) का दर्शन है, जिसमें अनन्त के साथ एक क्षण का मिलन भी हमारे अपने व दूसरों से भी पृथकीकृत अहम् की भ्रान्ति को तत्काल विलुप्त कर देता है। रामकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि जब तक हम संसार का एक अंश हैं और उससे अपने ऐक्य–बोध के लिए उसकी वास्तविकता का कभी–कभी न बुझने वाला विश्वास कायम रखते हैं। माया के विषय में बताते हुए कि वह इतनी प्रबल और बलिष्ट है कि वह ऋषि जो समाधि से साधारण जीवन में आता है तो उसे पुनः संसार की वस्तुओं से सनलिप्त होना पड़ता है, लेकिन जो योगी अपनी इन्द्रियों को समस्त बाह्य जगत् से निरपेक्ष कर लेता है वही ब्रह्म के साथ एकाकार होता है। और रामकृष्ण भी उन्हीं में से एक थे।[7]

उन्होंने बाह्य व आभ्यन्तर दोनों तरह से भगवान् के दर्शन किये थे। भगवान् ने अपने आपको उनके सम्मुख उद्घाटित कर दिया था। साकार भगवान् ने उनसे कहा था– ''मैं ही निरपेक्ष हूँ। मैं ही पृथकीकरण का मूलाधार हूँ।'' इसलिए रामकृष्ण माँ का स्तुतिगान करने लगे।[8]

''मेरी दिव्य माँ निरपेक्ष से भिन्न नहीं है। वह एक साथ ही एक और अनेक है, वह एक और अनेक की अपेक्षा भी महान् है।'' मेरी माँ कहती है, ''मैं ही विश्व की जननी हूँ, मैं ही वेदान्त का ब्रह्म हूँ, मैं ही उपनिषद् का आत्मा हूँ। मैं ही वह ब्रह्म हूँ जिसने पार्थक्य की सृष्टि की है। अच्छा व बुरा सभी समान भाव से मेरे आदेश का पालन करते हैं। कर्म का नियम वस्तुतः विद्यमान है। मैं ही नियमों की निर्मात्री हूँ। अच्छे व बुरे सब कर्म मेरे ही आदेशों का पालन करते हैं। मेरे पास आओ। चाहे प्रेम या भक्ति के द्वारा आओ, चाहे ज्ञान के द्वारा आओ या कर्म के द्वारा आओ सभी भगवान् की तरफ ले जाते हैं। मैं इस संसार के बीच से इस कर्म–समुद्र के मध्य से तुम्हें पथप्रदर्शन करूँगी। जिन्होंने समाधि में निरपेक्ष पुरुष (परब्रह्म) के दर्शन कर लिये हैं। वे भी मेरी इच्छा की प्रेरणा से पुनः मेरे पास वापस आ जाते हैं।'' मेरी माँ आदिमतन दिव्य शक्ति है, वह सर्वव्यापक हैं।

इस प्रकार ध्यान से समाधि तक रामकृष्ण छः महीने से अधिक समय तक, निमग्न जादू–शक्ति–सम्पन्न अग्निमण्डल के अन्दर ही रहे और जब तक उनका शरीर सहन कर सका, उन्होंने निरपेक्ष सत्ता के साथ एकत्व सम्पादन जारी रखा। यदि यह वर्णन विश्वसनीय है तो छः महीने तक वे अंग संचालन शून्य समाधि–अवस्था में बने रहे। शून्य मण्डल में आत्मा को रोके रहना यह आसान कार्य न था, यानि 'निराकार' के साथ और अधिक काल तक समाधि–मिलन में रहना सम्भव न था। इसके अतिरिक्त उनके यौगिक भावावेश का यही चरमकाल था।[9] बाद में रामकृष्ण ने स्वयं यह अनुभव किया कि वे ईश्वर को प्रलुब्ध कर रहे थे और यह एक आश्चर्य है कि वे कैसे वापस लौट आये। उन्होंने इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि उनके शिष्य कभी किसी ऐसी परीक्षा में प्रविष्ट होने का प्रयत्न न करें। उन्होंने विवेकानन्द को भी यह कहकर इनकार कर दिया कि यह एक ऐसा आनन्द है, जिसका उपभोग

उन उच्च आत्माओं के लिए निषिद्ध है, जिनका यह पुनीत कर्तव्य है कि वे दूसरों की सेवा के लिए अपने सुखों का त्याग कर दें।[10]

सन्दर्भ–सूची

1– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–34
2– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–35
3– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–37
4– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–49
5– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–50
6– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–55
7– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–62
8– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–64
9– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–68
10– रामकृष्ण परमहंस, रोमांरोलां, लोकभारती पेपर बैक्स, पृष्ठ–68

●